International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(1): 180-184

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(1): 180-184
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 03-11-2019
Accepted: 06-12-2019

Dr. JR Kashyap
Associate Professor, Department of Sanskrit, Govt. College Solan, Solan, Himachal Pradesh, India

Corresponding Author:
Dr. JR Kashyap
Associate Professor, Department of Sanskrit, Govt. College Solan, Solan, Himachal Pradesh, India

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के चतुर्थ अंक की महत्ता एवं तन्निरुपित कालिदासीय सन्देशों की उपादेयता

Dr. JR Kashyap

प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य के मूर्धन्यतम् नाटककार कविकुलगुरु महाकवि कालिदास द्वारा विरचित नाटक ''अभिज्ञानशाकुन्तलम्'' न केवल भारतीय अपितु विश्व नाट्यसाहित्य के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। महाभारत की उपजीव्यता में प्रणीत इस महनीय कृति का समूचा कलेवर सात अंकों में विभाजित किया गया है। नाटकीय विधि–विधानों के सम्यग्निर्वहण तथा वर्ण्य–विषय की कुशल अभिव्यंजना के कारण यह नाट्य रचना भारतीय एवं भारतेतर सभी विद्वानों में समानरुपेण समादृत है। शाकुन्तल नाटक के अद्वितीय शिल्प से प्रभावित भारतीय विद्वानों का निम्न कथन द्रष्टव्य है–

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि चतुर्थोऽंकः तत्र श्लोकचतुष्ट्यम्।।

उक्त कथन के माध्यम से भारतवर्ष में ''अभिज्ञानशाकुन्तलम्'' नाटक की सर्वोत्कृष्टता निर्विवाद रुप से स्वीकार की गयी है। इसके अतिरिक्त नाटक के चतुर्थ अंक और तद्वर्णित चार श्लोकों को महत्त्व की दृष्टि से बहुत अधिक अधिमान दिया गया है। प्रस्तुत आलोच्य विषय में नाटक के चतुर्थ अंक की महत्ता एवं उसमें वर्णित कालिदासीय सन्देशों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया जा रहा है–

चतुर्थ अंक की महत्ता– 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' का चतुर्थ अंक वास्तव में इस नाटक का प्राण है। यह अंक न केवल वर्ण्य–विषय की रोचकता की दृष्टि से ही अपितु अंकों की गणना के आधार पर भी आरम्भिक तीन अंकों के बाद तथा अन्त के पंचम्, षष्ठ और सप्तम् अंकों से ठीक पूर्व अवस्थित होने के कारण नाटक का मध्य मणि सिद्ध होता है। इस अंक में वर्णित दो विलक्षण घटनाएं अन्य अंकों की अपेक्षा इसे विशेष बनाती हैं। प्रथम घटना के अनुसार जिस नायिका के अप्रतिम सौन्दर्य एवं चारित्रिक विशेषताओं को अंकित करते हुए कालिदास की लेखनी कभी विश्रान्ति नहीं लेती है उसी शकुन्तला को वे शील च्युति के परिणामस्वरुप महर्षि दुर्वासा का कोपभाजन बना देते हैं। दूसरी घटना के रुप में शकुन्तला की भावुकतापूर्ण विदाई का अद्भुत चित्रण हुआ है जिसमें आश्रम की समूची स्थावर जंगमात्मक सृष्टि बेसुध सी एकाकार रुप में कारुणिकता के सागर में गोते लगाते हुए देखी जा सकती है। दोनों ही घटनाओं का निरुपण निम्नरुपेण प्रस्तुत किया जा रहा है–

शाप की घटना एवं उसका महत्त्व– नाटक को रोचक बनाने में शाप की घटना का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है। पति मिलन की उत्कट अभिलाषा से व्याप्त विरहिणी शकुन्तला के पतिगृहगमन से ठीक पूर्व घटित इस घटना से जहाँ एक ओर दर्शक एवं पाठक सन्न रह जाते हैं वहीं दूसरी ओर उनमें भावी वस्तु योजना के विषय में भी प्रबल जिज्ञासा एवं उत्सुकता उत्पन्न हो जाती है। इस अवसर पर महाकवि कालिदास का घटना संयोजन वास्तव में दर्शनीय है। यद्यपि यह प्रसंग कवि की मौलिक रचना है फिर भी यहाँ सभी घटनाओं का प्रवाह अनायास एवं स्वभाविक रुप से घटित हुआ सा जान पड़ता हैं। पति वियोग की आग में सन्तप्त तथा भावी अनिष्ट से आशंकित आपन्नसत्त्वा शकुन्तला का बेसुध एवं अन्यमनस्क होना स्वभाविक है। शकुन्तला की मनःस्थिति को भाँपते हुए अनुसूया और प्रियंवदा का उसको साथ लिये बिना पुष्पावचयन हेतु बाहर जाना भी समुचित ही लगता है। इसी प्रकार भिक्षाटन हेतु पर्णकुटी के द्वार पर पधारे सुलभकोपा ऋषि दुर्वासा का स्वयं की और आश्रम धर्म की अवहेलना करने वाली शकुन्तला को निम्न शब्दों से अभिशापित करना परिस्थितियों के अनुरुप एक नैसर्गिक घटना ही प्रतीत होता है–

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन् कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव।।[1]

उक्त सभी घटनाओं के वर्णन में पाठक/दर्शक महाकवि कालिदास की लेखनी का चमत्कार तो देख ही सकते हैं साथ ही साथ अपने नाटक की नायिका के प्रति विशेष आग्रह रखने वाला कवि यहाँ सहसा तटस्थता का आश्रय लेता हुआ भी दृष्टिगत होता है। अभिशापन जैसी भीषण घटना को घटित होता देखकर भी लेखक का ताटस्थ्य आश्चर्यजनक तो है परन्तु निष्प्रयोजन नहीं है। महाकवि कालिदास जीवन में व्यवस्थाओं की अनुपालना के प्रबल पक्षधर रहे हैं। उन्होंने आतिथ्य को आश्रमधर्म के अभिन्न अंग के रुप में स्वयं स्थापित किया है–''अतिथिं जीवित–सर्वस्वेनापि कृतार्थम् कुर्यात्।''[2] अतिथि सत्कार रुपी आश्रमधर्म की अवज्ञा उन्हें अंश मात्र भी स्वीकार्य नहीं है फिर उपेक्षा करने वाली चाहे नाटक की नायिका ही क्यों न हो? आश्रम धर्म जैसे गम्भीर विषय को सांसारिक प्रणय की बलि वेदी पर न्योछावर करना कवि को तनिक भी अभीष्ट नहीं है। कर्त्तव्य कर्मों के निर्वहण में होने वाली प्रमादशीलता को वे अक्षम्य मानते हैं फिर प्रमादपरता का चाहे कोई भी कारण हो। कवि का अप्रत्यक्ष मत यही है कि सांसारिकता का मोह व्यक्ति को कर्त्तव्य पथ से तो च्युत करता ही है साथ में उसके कल्याण मार्ग को भी अवरुद्ध कर देता है। सदाचरण, अनुशासन और मर्यादित जीवन के प्रखर प्रहरी महाकवि कालिदास इस बात से भी भली भाँति परिचित है कि यह भावनाओं का संसार है। इस संसार में आकर मानव का भावनाओं के मकड़जाल में उलझ जाना एक ऐसी स्वभाविक प्रक्रिया है जो उसे दुर्बल बना देती है। यह विचार आते ही कवि का हृदय शकुन्तला के प्रति सहानुभूति और सम्वेदना से भर जाता है। अपनी सम्वेदनाओं को मूर्त रुप देते हुए वे बड़ी कुशलता से एक तो शापिता को दुर्वासा प्रदत्त शाप का श्रवण नहीं होने देते और साथ में अनुसूया के माध्यम से शाप निवारण के उपाय का प्रावधान भी कर लेते हैं। शाप वृत्तान्त की अनभिज्ञता से जहाँ एक ओर शकुन्तला पर दुःखों का एक और पहाड़ टूटते–टूटते रह जाता है वहीं दूसरी ओर शाप निवारण की संजीवनी पाकर उसकी भावी आशाओं को भी बहुत बड़ा अवलम्बन मिल जाता है। इसके साथ ही शकुन्तला के साथ सहानुभूति रखने वाले पाठक एवं दर्शक भी एक सन्तोषजनक आश्वासन पाकर आनन्द का अनुभव करते हैं।

इस प्रकार इस घटना के माध्यम से कवि ने यह सन्देश दिया है कि कर्त्तव्य कर्मों की अनदेखी एवं मर्यादाओं का अतिक्रमण व्यक्ति को अमंगलकारी अनिष्ट के मार्ग पर धकेल देता है। मोह जन्य दुर्बल प्रवृत्तियों को परास्त करके ही मानव अपने अभीप्सित लक्ष्य की सिद्धि कर सकता है। इसके अतिरिक्त नाटकीय दृष्टि से यदि शाप की घटना का मूल्यांकन किया जाए तो कहा जा सकता है कि इस घटना के समावेश से नाटक का कथानक अप्रत्याशित ऊँचाई का स्पर्श करने में सफल रहा है। नाटक की नायिका का अभिशप्त होना जहाँ एक ओर पाठकों एवं दर्शकों को विस्मय में डालकर उनकी भावी जिज्ञासाओं तथा उत्कण्ठाओं को उद्वेलित करता है वहीं दूसरी ओर उनके मन में नायिका के प्रति गहरी सहानुभूति को उत्पन्न करके उन्हें नाटक के प्रवाह से जोड़े रखता है जो इस घटनाचक्र की सबसे बड़ी खूबसूरती एवं सफलता है।

शकुन्तला की भावपूर्ण विदाईः–शाप की घटना का सकुशल वर्णन करने के पश्चात् महाकवि कालिदास ने शकुन्तला की भावपूर्ण विदाई को भी शानदार अभिव्यक्ति दी है। सद्य प्रसूता एवं माता–पिता द्वारा परित्यक्त जिस नन्हीं सी शकुन्तला को महर्षि कण्व वर्षों पूर्व आश्रम में लेकर आए थे आज उसी की पतिगृहगमन की पावन बेला उपस्थित हो आई है। अबोध बालपन से लेकर युवावस्था की दहलीज तक आते–आते शकुन्तला अपने व्यवहार कौशल एवं आकर्षक व्यक्तित्व के परिणामस्वरुप आश्रम के परिवेश में कुछ इस प्रकार से रच–बस जाती है कि तपोवन की चर–अचर समूची सृष्टि आज उसके वियोग की पीड़ा से आतुर दिखाई देती है। आश्रम के लता–पादपों से लेकर पशु पक्षियों तक सबके साथ शकुन्तला का सम्बन्ध अत्यन्त आत्मीय एवं सम्मानजनक रहा है। आश्रम के उद्यानों में आरोपित लता–पादपों के अभिसिंचन पर्यन्त स्वयं जलपान का आग्रह न करना, शृंगारप्रिया होते हुए भी प्रसाधन हेतु कभी एक कोंपल तक तोड़ने की आकांक्षा न रखना तथा वृक्षों के फूल आने के आह्लादक अवसर पर उनकी प्रसन्नता में सोत्साह शामिल होते हुए उत्सव मनाना[3] आदि कुछ ऐसे कृत्य हैं जो उसके अनन्य प्रकृति प्रेम को उद्घाटित करते हैं। शकुन्तला के अखण्ड स्नेह एवं समर्पण से अभिभूत हुए आश्रम के तरु–पादप जड़ होते हुए भी उसकी विदाई के अवसर पर भाव–विभोर हो उठते हैं और चिरकाल तक मूक दशा को प्राप्त हुए उनके कृतज्ञता के भाव विविध उपहारों की झड़ी लगाते हुए सहसा मुखरित हो जाते हैं। एक वृक्ष शुभ्र वर्ण का रेशमी वस्त्रों का जोड़ा प्रदान करता है तो दूसरा स्वतः स्फूर्त होकर प्रसन्नतापूर्वक महावर का रस निकाल कर दे देता है। इसी प्रकार अन्य वृक्ष भी परस्पर प्रतिस्पर्धा को प्राप्त हो अनेक प्रकार की अलंकरण की सामग्री उपलब्ध करवा देते हैं।[4] इससे यह ध्वनित होता है कि यदि शकुन्तला का प्रकृति के पेड़–पौधों से सोदर स्नेह हैं तो प्रकृति के ये पादप भी शकुन्तला को सोदरा ही मानते हैं। इसी आत्मीय सम्बन्ध के कारण वे उसे भेंटस्वरुप अनेकविध उपहार प्रस्तुत करते हैं।

आश्रम के वृक्ष–वनस्पतियों के अनन्तर वहाँ के पशु–पक्षियों से भी शकुन्तला का अद्भुत नाता है। प्रसव के तुरन्त बाद अकाल काल का ग्रास हुई मृगी के सद्य जात शावक का पुत्रवत् लालन पालन करने में वह अग्रणी भूमिका निभाती है।[5] कुशा के अग्र भाग से बिंध जाने पर मृगशिशु के घावों का इंगुदी के तेल से उपचार करते हुए वह अनूठी सम्वेदनशीलता एवं सेवा भाव का परिचय देती है।[6] निश्चय ही उसकी इन्हीं सद्वृत्तियों से भिज्ञ आश्रम की चेतन–अचेतन सृष्टि उसकी विदाई के अवसर पर वर्णनातीत उत्कण्ठा एवं व्याकुलता से सरा बोर हो जाती है। जहाँ एक ओर पुत्रवत् पालित मृगशावक विदाई के अवसर पर उसके मार्ग को रोक लेता है[7] वहीं दूसरी ओर विरह जनित व्याकुलता के कारण आश्रम का मृग कुशग्रास को अधचबा ही वमन कर देता है, मयूर नृत्य करना छोड़ देते हैं तथा पीले पत्तों को गिराने के बहाने से लताएं तक अश्रु मुंचन करने लगती हैं।[8] इसी प्रकार एक दूसरे के वियोग में रात्री व्यतीत करने वाले चकवे पक्षियों की मनोदशा भी आज अनूठी है। दोनों पास–पास विराजमान हैं और कमलिनी के पत्तों की ओट में विराजित चकवी अपने प्रियतम को अविरल पुकारे जा रही है किन्तु बेचारा चकवा शकुन्तला की विरह वेदना से इस प्रकार पीड़ित है कि उसका ध्यान चकवी की पुकार की ओर अंश मात्र भी नहीं जा पा रहा है। यहाँ तक कि विषादग्रस्त दृष्टि से एकटक शकुन्तला को देखता हुआ चकवा भक्षणार्थ मुख में रखे गये कमलनाल का भक्षण करना भी भूल गया है।[9] बचपन से लेकर युवावस्था तक जिसका पालन–पोषण प्रकृति के साहचर्य में सम्पन्न होता है उस प्रकृति की अनन्या सहचरी शकुन्तला के प्रति तपोवन की मानवेतर जड़–चेतन अखिल सृष्टि का इस प्रकार का अपनापन देखकर यदि किसी भी सहृदय प्राणी का हृदय भर आए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। चकवे पक्षियों के उक्त प्रसंग के माध्यम से नाटकीय दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण तथ्य भी उद्घाटित हुआ है। तदनुसार यह ध्वनित होता है कि चकवी के सतत पुकारने पर भी यथा चकवा उसकी ओर से उदासीन ही रहता है उसी प्रकार आने वाले समय में शकुन्तला के अनेकों प्रयास करने पर भी दुष्यन्त उसकी पहचान न करते हुए उसे ठुकरा देगा।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन के आलोक में कहा जा सकता है कि महाकवि कालिदास ने मानव और प्रकृति का अद्भुत विलय प्रस्तुत करते हुए उनके जिस समष्टि स्वरुप को प्रस्तुत किया है वह अपने आप में विलक्षण है। प्रकृति का मानवीकरण करते हुए उन्होंने यही सन्देश प्रसारित किया है कि प्रकृति और मानव का परस्पर अनादि

सम्बन्ध रहा है। एक दूसरे के अनुपूरक होने के साथ–साथ वे अन्योन्याश्रित भी है। भावी पीढ़ियों के लिये प्रकृति को सहेजकर रखने में ही समूची मानव सभ्यता का कल्याण निहित है। इसके साथ–साथ कुशल कवि इस बात से भी पूर्णतया परिचित है कि भारतीय संस्कृति में पिता के घर से कन्या का पतिगृह के लिये विदा होना बड़ा करुणामयी एवं हृदयस्पर्शी क्षण होता है और इस अवसर पर उन्होंने ने प्रकृति के सुकोमल स्वरुप को उभारते हुए उसकी भावनाओं एवं सम्वेदनाओं को जो चमत्कारजनक स्वर प्रदान किया है वह निश्चय ही न केवल बेजोड़ कलाकारिता का सुन्दर दृष्टान्त प्रस्तुत करता है अपितु दर्शकों एवं पाठकों की सद्यपरिनिर्वृत्ति अर्थात् उन्हें अनिर्वचनीय अलौकिक आनन्द प्रदान करने में भी सफल रहा है।

आश्रम की मानवेतर सृष्टि की मनोदशा का प्रभावकारी निरुपण करने के पश्चात कवि ने विदाई की हृदयस्पर्शी घड़ी में मानवीय पात्रों की भावनाओं का भी सुन्दर एवं सजीव चित्रण किया है। विशेषतः शकुन्तला, उसकी सहचरियों एवं उसके पालक एवं धर्मपिता महर्षि कण्व की करुणापूर्ण मनःस्थितियों का मार्मिक प्रतिपादन उल्लेखनीय है। प्रियंवदा और अनुसूया शकुन्तला की बालसखियाँ है और उसके प्रति उन दोनों की आत्मीयता एवं अद्भुत समर्पण से परिपूर्ण मैत्रीभाव देखते ही बनता है। दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रेम–प्रसंग की सफल परिणति में दोनों सखियाँ निःस्वार्थ भाव से सहयोग करती हुई दृष्टिगत होती हैं। गन्धर्व विवाह की सम्पन्नता के अनन्तर दुष्यन्त के राजधानी लौटने पर पति वियोग से खिन्ना शकुन्तला का वे दोनों पूरा ध्यान रखती हैं और उसके भविष्य के विषय में सदैव चिन्तित रहती हैं। अपनी प्रिय सखी पर महर्षि दुर्वासा की शापरुपा सौदामिनी को गिरता देख दोनों सखियाँ दहल उठती हैं और शीघ्रतापूर्वक अपने बौद्धिक कौशल से दुर्वासा जैसे सुलभकोपा ऋषि का अनुकूलन करके शाप के निवारण का उपाय साधते हुए भीषण शाप के आघात से अपनी सखी की रक्षा करती हैं।[10] नैसर्गिक सौख्यभाव की डोर से बँधी दोनों सखियां शकुन्तला के प्रास्थानिक समारोह के मंगलमयी अवसर पर जहाँ एक ओर असाधारण उत्कण्ठा से भर जाती हैं वहीं दूसरी ओर उन्हें इस बात का सन्तोष होता है कि पति के घर जाकर उसकी सारी चिन्ताएं निरस्त हो सकती हैं।[11] शकुन्तला के प्रस्थान से ठीक पूर्व तीनों सखियों के मिलन का चित्रण अत्यन्त मार्मिक एवं हृदयतल का स्पर्श करने वाला है। दोनों सखियां दुल्हन बनीं अपनी प्रिय सखी का मण्डन करने के लिये प्रस्तुत होती हैं तो शकुन्तला स्नेह सिक्त हृदय से उनका स्वागत करती है। सखियों द्वारा किए जाने वाले शृंगार को अपने जीवन का अन्तिम शृंगार कहकर शकुन्तला भावुक होकर रो पड़ती है।[12] दोनों सखियाँ अपनी भावनाओं और उमड़ते आँसुओं को नियंत्रित करते हुए उसे प्रकृतिस्थ करने का प्रयास करती हैं। इस दृश्य के अन्तर्गत तीनों सखियों की उपस्थिति वास्तव में दर्शकों के अन्तर को छू जाती है और वे करुणा के भावपूर्ण महार्णव में गोते लगाते हुए नम नेत्रों से अनूठे आनन्द का अनुभव करते हैं। एक अन्य प्रसंग में प्रियंवदा और अनुसूया की हृद्गत भावनाओं का बाँध भी उस समय ध्वस्त हो जाता है जब माधवी नाम से आख्यात लता भगिनी से विदाई लेकर शकुन्तला उसे धरोहर के रुप में सखियों के हाथों में सौंप देती है। उसके इस कृत्य से दोनों का हृदय भर आता है और उनके अन्तर्मन की व्यथा शब्द बिम्बों में रुपायित होकर इस प्रकार प्रस्फुटित हो जाती हैं–''अयं जनः इदानीम् कस्य हस्ते समर्पितः'' अर्थात् हमें किसके हाथों में सौंप कर जा रही हो? अपने भावी जीवन में शकुन्तला की अनुपस्थिति की उत्प्रेक्षा मात्र से वे दोनों सिहर उठती हैं और नेत्रों से अविरल अश्रुधारा फूट पड़ती है।[13] भावातिरेक से अनुप्राणित इस अवसर पर महर्षि कण्व स्वयं हस्तक्षेप करते हुए विरह वेदना से विचलित दोनों सखियों को सहानुभूति देते हैं।[14] इसी प्रकार आश्रम से प्रस्थान करती हुई अपनी अनन्या सखी को वे भारी हृदय से देर तक दूर जाता हुआ देखती हैं और जब वह आँखों से ओझल हो जाती है तो उनकी आन्तरिक पीड़ा की कोई सीमा नहीं रहती। उनके जीवन में एक ऐसा रिक्त स्थान निर्मित हो जाता है जिसके रहते आश्रमवासियों से परिपूर्ण तपोवन भी उन्हें सूना लगने लगता है। महर्षि कण्व विरहातुरा सखियों से जब आश्रम में प्रवेश करने को कहते हैं तो वे दोनों एक साथ अपनी पीड़ा का बखान कुछ इस प्रकार करती हैं–''तात्! शकुन्तलाविरहितं शून्यमिव तपोवनं कथं प्रविशावः''।[15] वास्तव में किसी प्रिय के बिछुड़ने से होने वाले अभाव की क्षतिपूर्ति में समय लग जाता है। तात्कालिक परिस्थितियों में वियोग जन्य आघात से उभर पाना अत्यन्त कठिन होता है।

सखियों की शोकाकुलता के समान ही अरण्यवासी एवं सांसारिक प्रपंचों से दूर रहने वाले महर्षि कण्व का हृदय भी आज असीम पीड़ा का अनुभव कर रहा है। पुत्री वियोग की इस मर्माहत कर देने वाली घड़ी में उनके वात्सल्य रस से पूर्ण पितृ हृदय से जिन स्नेह सिक्त उद्गारों का प्रस्फुटन होता है, वे भाव ऐसे अवसर पर किसी भी पिता के मुख से निकल सकते हैं–

> यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठ्या, कण्ठः स्तम्भित–वाष्प–वृत्ति–कलुषश्चिन्ता–जडं दर्शनम्।
> वैक्लव्यं माम् तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः, पीडयन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः।।[16]

अर्थात् 'शकुन्तला आज अपने पति के घर चली जाएगी' यह सोचकर मेरा हृदय सघन उत्कण्ठा से व्याप्त हो गया है। उमड़ते आँसुओं को प्रयत्नपूर्वक रोकने से मेरा गला भर आया है। चिन्ताक्रान्त होने के कारण मेरी देखने की शक्ति कुण्ठित हो गयी है। अरण्यवासी होते हुए भी पुत्री स्नेह के परिणामस्वरुप जब मुझे इतनी व्याकुलता हो रही है तो गृहस्थाश्रम का सेवन कर रहे गृहस्थी पुत्री वियोग के नए–नए दुःख को प्राप्त करके कितने पीड़ित हो जाते होंगे। उक्त पद्य के माध्यम से महाकवि कालिदास ने समीपवर्ती पुत्रीवियोग से सन्तप्त पिता के मनोगत भावों का बड़ा ही सूक्ष्म एवं यथार्थ चित्रण किया है जो कवि के सामाजिक जीवन से सम्बद्ध ज्ञान की गहनता एवं व्यापकता का भी द्योतक है।

अन्ततः प्रास्थानिक समारोह की केन्द्रभूता शकुन्तला की मनःस्थिति के विषय में यदि बात की जाए तो कहा जा सकता है कि आज उसका हृदय भी अनूठी दुविधापूर्ण स्थितियों से ओत–प्रोत है। एक ओर तो उसके मन में पतिमिलन की उत्कट इच्छा है तो दूसरी ओर बन्धु–बान्धवों एवं मातृभूमि का स्नेह उसे अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। हस्तिनापुर की ओर जाने वाले मार्ग पर उसके कदम मुश्किल से आगे बढ़ते हैं–''हला प्रियंवदे! आर्यपुत्रदर्शनोत्सुकाया अप्याश्रमपदम त्यजन्त्या दुःखेन मे चरणौ पुरतः प्रवर्तते।''[17] शकुन्तला एक स्नेहिनी सुता है और अपने पिता के प्रति उसके मन में अगाध श्रद्धा एवं सम्मान का भाव विद्यमान है। पिता की स्नेहपूर्ण गोद से वियुक्त होते हुए उसे अवर्णनीय पीड़ा का अनुभव होता है और उसका रोम–रोम कह उठता है–''कथमिदानीम् तातस्यांकात् परिभ्रष्टा देशान्तरे धारयिष्यामि।''[18]तपसाधन रुप श्रम साध्य कार्य में तल्लीन रहने से कृशकाय पिता कण्व के स्वास्थ्य की उसे विशेष चिन्ता रहती है और वह उनसे अपने वियोग से उत्पन्न होने वाले दुःखों से दुःखी न होने का आग्रह करती है–''तपश्चरणपीड़ितं तात शरीरं। तन्मातिमात्रं मम कृते उत्कण्ठितुम्।''[19] पिता के पश्चात् अपनी दोनों सखियों से उसे अनन्त स्नेह है। जाने से पूर्व दोनों सखियों को एक साथ गले लगाकर उनके प्रति एक समान सखि स्नेह को प्रकट करते हुए वह श्लाघ्य व्यवहार कौशल का परिचय देती है–''द्वेऽपि सममेव माम् परिष्वजेथाम्''।[20] इस अवसर पर वह उस माधवी लता का आलिंगन करना भी नहीं भूलती जिसको उसने अपनी बहन का दर्जा दे रखा है। आश्रम के प्रांगण को छोड़ते हुए वस्त्र खींचकर ध्यान आकृष्ट करने वाले तथा पुत्रवत् पालित दीर्घापांग नामक मृगशावक को अनेक प्रकार से सान्त्वनाएं देते हुए उसके पालन पोषण का दायित्व पिता कण्व को सौंपना भी विस्मृत नहीं करती।[21] शकुन्तला की स्वभावगत मासूमीयत एवं

जीवमात्र के प्रति उसके अपूर्व अपनेपन का एक और उदाहरण उस समय देखने को मिलता है जब वह अपने वियोग की तड़प में आश्रम के चक्कर काट रही गर्भधारिणी मृगी के सुखद प्रसव का समाचार प्रेषित करने का पिता कण्व से विशेष आग्रह करती है–''तात्! एषोटज–पर्यन्त–चारिणी गर्भ–मन्थरा मृगवधुर्यदानघ–प्रसवा भवति तदा मे कमपि प्रिय–निवेदयितृकम् विसर्जयिष्यथ।''[22]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि शकुन्तला की विदाई के अवसर पर महाकवि कालिदास ने अनेक भावुकता भरे छोटे–छोटे प्रसंगों की रचना की है जिनको देखकर दर्शकों का अन्तस्तल द्रवित होकर सिसक भी उठता है और उनका पर्याप्त मनोविनोद भी होता है। इस प्रसंग में प्रकृति और मानवीय सृष्टियों की सक्रिय भागीदारी कथानक को जो गतिशीलता प्रदान करती है उसके कारण नाटक का दर्शक कभी ऊबता हुआ नहीं दिखाई देता है। निश्चय ही उपर्युक्त दोनों घटनाओं में कवि का वर्णन वैशारद्य अपने चरम का स्पर्श करता हुआ देखा जा सकता है।

महाकवि कालिदास के सन्देश– चतुर्थ अंक का वर्ण्य विषय महकवि कालिदास को अपने जीवन के संचित अनुभवों पर आधारित वैदुष्यपूर्ण उपदेशों एवं शिक्षाओं को भी जनसामान्य के समक्ष उपस्थित करने का सुन्दर अवसर प्रदान करता है। इस अवसर का लाभ उठाते हुए कवि ने अपनी पाण्डित्यपूर्ण कवि प्रतिभा से विविध जीवनोपयोगी सिद्धान्तों को यथास्थान वर्णित किया है। सर्वप्रथम प्रातःकालीन उदित होते हुए सूर्य तथा अस्ताचल की ओर अग्रसर चन्द्रदेव का चित्रण करते हुए[23] कवि ने संसार के लोगों को यही उपदेश दिया है कि उन्नति–अवनति, उत्थान–पतन एवं सुख–दुःखादि द्वन्द्व मानव जीवन के अपरिहार्य अंग हैं। जीवन यात्रा में कभी मानव उन्नति के शिखर का स्पर्श करता है तो कभी अवनति के गर्त में जा गिरता है। कभी वह सांसारिक सुखों से आनन्दित होकर हर्ष का अनुभव करता है तो अगले ही पल दृःखों के भँवर में उलझकर शोक के अन्धकारपूर्ण सागर में निमग्न हो जाता है। मानव जीवन की उतार चढ़ावों से परिपूर्ण सभी परिस्थितियों से गुजरते हुए हमें कदापि न तो विचलित होना चाहिए और न ही गर्व से गर्वित । द्वन्द्वों को जीवन का अभिन्न अंग स्वीकार करते हुए सभी दशाओं में बुद्धि को सन्तुलित रखना चाहिए। इसी प्रसंग में अस्त होते हुए चन्द्रमा का वर्णन करते हुए उन सभी लोगों को सचेत किया गया है जो जीवन में उन्नतावस्था को प्राप्त कर अहंकार के मद में चूर हो जाते हैं। कवि का कहना है कि उदित होता हुआ चन्द्रमा सर्वप्रथम सुमेरु पर्वत के शिखर पर अपनी किरणों का विन्यास करता है। तदनन्तर अन्धकार को छिन्न–भिन्न करके अपने प्रभाव का विस्तार करता हुआ विष्णु के मध्यम धाम को अपने अधिकार में लेकर उसका स्वामी बन बैठता है। किन्तु सबल काल की गतिशीलता में जब उसके उन्नत जीवन को ढलना होता है तो प्रभात बेला में उसकी कान्ति धीरे–धीरे मन्द होकर विनष्ट हो जाती है। कवि के ही शब्दों में–''दूरारोह भवति महतामप्यपभ्रंशनिष्ठः''[24] अर्थात् बड़े से बड़े व्यक्ति का उच्चस्थ पद को प्राप्त करना भी पतन में परिवर्तित होने वाला होता है। कवि ने समूची मानव जाति को यही सीख दी है कि आरोहण और पतन जीवन के वे अंश हैं जिनका चक्र सतत रुप से चलता रहता है। इस शाश्वत सत्य को अंगीकार करने वाला व्यक्ति ही जीवन में सुख का अनुभव कर सकता है। इसी प्रकार विदाई के अवसर पर महर्षि कण्व के मुखारविन्द से शकुन्तला के नाम जो आदर्श सन्देश प्रसारित करवाया गया है उसकी उपादेयता भी निःसन्देह सार्वकालिक है। विवाह जैसी महत्त्वपूर्ण सामाजिक संस्था में प्रविष्ट होने की इच्छा रखने वाली कोई भी युवती इस सन्देश को आत्मसात करके अपने वैवाहिक जीवन को सफल बना सकती है। पति के घर जाकर नव परिणीता ललना की व्यवहारिकता ही स्थूलतया उसके अच्छे या बुरे होने का मापदण्ड होती है। महाकवि ने अपने सन्देश के माध्यम से नव विवाहिता स्त्री के लिये जिस आचार संहिता को प्रस्तावित किया है उसमें व्यवहारिकता के समस्त उत्कृष्ट आदर्शों का समावेश देखने को मिलता है। एक कुलीन राजपरिवार का अंश होने जा रही शकुन्तला को ससुराल में जिन–जिन परिस्थितियों से दो चार होना है उन दशाओं का कुशल रेखांकन पाँच रुपों में किया गया है–गुरुजनों, राजा की दूसरी रानियों अर्थात् सपत्नियों, पति, परिजनों एवं समृद्धि आदि से सामना होने पर उसे जिस दृष्टिकोण को अपनाना होगा उसका बड़ा सारगर्भित विश्लेषण यहाँ प्रस्तुत किया गया है–

> शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रिय–सखी–वृत्तिं सपत्नीजने,
> भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
> भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी, यान्त्येवं
> गृहिणीपदं युवतयोः वामाः कुलस्याधयः।।[25]

अर्थात् पति के घर जाकर सास–ससुर एवं अन्य गुरुजनों की सेवा करना, अपनी सौतों से सखियों का सा व्यवहार करना, तिरस्कृत होने पर भी अमर्ष के वशीभूत होकर कभी पति के विरुद्ध आचरण न करना, सेवक वर्ग के साथ सदैव उदारता का व्यवहार करना और अपनी सम्पत्तियों पर कदापि गर्वित न होना। इस प्रकार आचरण करने से ही तरुणी स्त्रियाँ गृहिणी के पद पर पहुँचती हैं और इसके विपरीत आचरण करने वाली तो कुल के लिये मानसिक चिन्ता का कारण बनती हैं। उक्त कथन के माध्यम से जहाँ एक ओर महाकवि कालिदास की सामाजिक जीवन से सम्बद्ध व्यापक समझ एवं सूक्ष्म निरीक्षण का यथार्थ अनुमान होता है वहीं दूसरी ओर इसमें 'गागर में सागर' की कहावत को चरितार्थ करते हुए गृहस्थ जीवन में प्रवेश चाहने वाली प्रत्येक युवती को एक ऐसा मूल मंत्र दिया गया है जिससे साधारण से साधारण स्त्री भी गृहलक्ष्मी के पद पर आसीन हो सकती है।

निष्कर्ष

अन्त में निष्कर्षरुपेण यही कहा जा सकता है कि चतुर्थ अंक के कलेवर के निर्माण में महाकवि कालिदास का शिल्प कौशल दर्शनीय एवं श्लाघनीय है। इस अंक की अनेकों घटनाएं दर्शकों के मानस पटल पर अमिट छाप छोड़ने वाली हैं। महर्षि कण्व की स्नेह स्रावी व्यकुलता, प्रियवंदा और अनुसूया के सखि स्नेह की नैसर्गिकता, शकुन्तला की विदाई पर आश्रम के तरुओं, पादपों, लतिकाओं एवं मृगियों की हृदयद्रावी भावुकता, भावी गृहिणी को कण्व द्वारा दी गयीं शिक्षाएं, शकुन्तला के मण्डन के अवसर पर तीनों सखियों का भावपूर्ण मिलन, शकुन्तला का दोनों सखियों को एक साथ गले लगाना एवं पिता के स्वास्थ्य के विषय में चिन्ता व्यक्त करना, प्रस्थान के समय दोनों सखियों की विषादपूर्ण अवस्था तथा पूरे तपोवन में व्याप्त सघन उदासी–इन सभी दृश्यों का चित्रण कवि ने इतनी यथार्थता से किया है कि दर्शकों/पाठकों का इनके साथ अनायास ही ऐसा तादात्म्यभाव हो जाता है कि उन्हें ये दृश्य कभी भुलाए नहीं भूलते। यही शाकुन्तल नाटक के चतुर्थ अंक का सर्वतोविशिष्ट वैशिष्ट्य है।

संदर्भ

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.1
2. वही प्रथम अंक, पृ.–38
3. वही 4.11
4. वही 4.7
5. वही चतुर्थ अंक, पृ.–210
6. वही 4.16
7. वही 4.16
8. वही 4.16
9. वही 4.18
10. वही चतुर्थ अंक, पृ.–170–176
11. वही चतुर्थ अंक, पृ.–188

12. वही चतुर्थ अंक, पृ.–192
13. वही चतुर्थ अंक, पृ.–206–208
14. वही चतुर्थ अंक, पृ.–208
15. वही चतुर्थ अंक, पृ.–222
16. वही 4.8
17. अभिज्ञानशाकुन्तलम् चतुर्थ अंक, पृ.–204
18. वही चतुर्थ अंक, पृ.–216
19. वही चतुर्थ अंक, पृ.–220
20. वही चतुर्थ अंक, पृ.–218
21. वही चतुर्थ अंक, पृ.–210
22. वही चतुर्थ अंक, पृ.–208
23. वही 4.2
24. वही 4.5
25. वही 4.21